मानव अस्तित्व”- अस्तित्ववाद के गर्भ से !

डॉ. सब्जार अहमद बट्ट

अंग्रेज़ी में *अस्तित्व* शब्द के लिए *Existence* शब्द का प्रयोग किया जाता है; केवल जीवित रहने की प्रक्रिया को हम अस्तित्ववान होना नहीं कह सकते, बल्कि जीवन की सार्थकता से संबंधित भाव ही अस्तित्व कहलाता है| इन्द्रिय-बोध रखने वाली प्रत्येक वस्तु का अस्तित्व होता है तथा हम उस जड़-चेतना को अस्तित्ववान की श्रेणी में रख सकते हैं जिसे स्वयं के होने का आभासहो |*अस्तित्व* शब्द मूल रूप से मानव-अस्तित्व के संदर्भ में ही प्रयोग में लाया जाता है | अधिकतर विचारकों तथा दार्शिनिकों ने भी मनुष्य के ही अस्तित्व को स्वीकार किया है | उनका विचार है कि जिसमें सोचने तथा समझने की क्षमता होती है केवल वही अस्तित्ववान होते हैं | अस्तित्ववादी विचारधारा की मान्यता भी कुछ इसी प्रकार की है | अस्तित्ववादी विचारकों के अनुसार- *“किसी वस्तु के प्रत्यक्ष होने और उसके अस्तित्ववान होने में अंतर है | कोई वस्तु अस्तित्ववान तभी स्वीकार की जा सकती है जब उसके सम्बन्ध में सोचने की अपेक्षा हो | उदाहरणतः किसी पत्थर का मौजूद होना एक पृथक् बात है, परन्तु उसका अस्तित्व तभी माना जाएगा जब उसके विषय में कुछ विचार किया जाय | अस्तित्व किसी वस्तु की स्थिति (state) मात्र नहीं, उसका कार्य (act) है|”*[1]

अस्तित्ववाद 19वी शताब्दी में एक आन्दोलन के रूप में सामने आया और आगे चलकर इस वाद ने एक प्रबल दर्शन का रूप धारण कर लिया | इस दर्शन ने केवल मनुष्य को ही अपना केन्द्रीय बिन्दु बनाया तथा उसकी कठिनाईयों एवं स्थिति से लोगों को अवगत कराने को ही अपना लक्ष्य बनाया | यह वह दर्शन है जिसमे मनुष्य स्वयं को इस संसार में पूर्ण रूप से स्थापित करने का भरसक प्रयास करता है जिसके लिए वह निरन्तर किसी न किसी विशेष ज्ञान का प्रयोग करता है |“Existence-Philosophy is the way of thought by means of which man seeks to become himself; it makes use of expert knowledge while at the same time going beyond it.”[2]

यह विचारधारा समय-समय पर लोगों को प्रभावित करती रही है | इस दर्शन का उद्भव *अस्तित्ववाद के पितामह* कहे जाने वाले कीर्केगार्द तथा नीत्शे, कार्ल जस्पेर्स, ज्यां पॉल सार्त्र जैसे प्रमुख विचारकों के पूर्व ही हो चुका था, जिसके बीज कई क्रांतियों तथा दो विश्व-युद्धों में बोये गए थे | जैसे-जैसे युग बदलता है वैसे-वैसे मानव-मस्तिष्क की चिंतन-धारा का विकास तथा परिवर्तन होता गया |

अस्तित्ववाद का सम्बन्ध मूल रूप से दर्शन के क्षेत्र से ही है | प्रथम एवं द्वतीय विश्व-युद्ध के पश्चात जीवन-मूल्यों के पतन और विज्ञान के बढ़ते चरणों के विरुद्ध मनुष्य की प्रतिक्रिया को विज्ञानवादी दार्शिनिकों ने ही *अस्तित्ववाद* का नाम दिया |

अस्तित्ववाद के उद्भव में कई कारण रहे हैं जिनमें, फ्रांस की राज्य-क्रान्ति, विश्व-युद्ध, विज्ञानवाद सम्मिलित है जिनके कारण मनुष्य के अस्तित्व पर आक्रमण होता रहा और वह इस संकट से बाहर आने के लिए तड़प उठा | इस छटपटाहट को उस समय के कई विचारकों का सहारा मिला जिनके विचार लोगों के भीतर अन्याय के प्रति लड़ने तथा अपने अस्तित्व को बचने के लिए साहस भरते रहें | वह अपने अस्तित्व की सुरक्षा के लिए विवश हो उठे| *'इस तरह अस्तित्ववाद अपने वर्तमान अर्थ में 19 सदी के मध्य की उपज है, जिसने प्रथम विश्व-युद्ध (1914-1919) के बाद व्यापक रूप धारण किया और जिसकी पृष्ठभूमि में औधोगिक क्रान्ति जनित वह भौतिकता थी जो मनुष्य के अस्तित्व की अवहेलना कर रही थी|'*[3]

अस्तित्ववाद ने ही मनुष्य के जीवन को सार्थक तथा संभव बनाया है| ज्यां पॉल सार्त्र की धारणा है कि मानव-सृष्टि के अतिरिक्त अन्य कोई सृष्टि नहीं है | उनका सिद्दांत है- *Existence precedes essence* अर्थात *अस्तित्व* सार तत्व से पहले आता है | इस सिद्दांत की व्याख्या करते वह कहते हैं-

“what do we mean by saying that existence precedes essence? We mean that man first of all exists, encounters himself, urges up in the world and defines himself afterwards…man is nothing else but that which he makes of himself.”[4]

अस्तित्ववाद मनुष्य को एक प्रारंभिक बिन्दु, एक निश्चित सार के बिना ही स्वतन्त्र घोषित करता है- एक ऐसा प्रारंभिक बिंदु जिसे स्वतंत्र और प्रामाणिक चयन से ही स्वास्थ्य बनाने की आवश्यकता है | दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि *अस्तित्व* एक ऐसी नीव है जिसके ऊपर मनुष्य सारतत्व तथा अन्य वस्तुओं का भवन खड़ा करता है| अस्तित्ववान होकर ही मनुष्य संसार के साथ पारस्परिक व्यवहार स्थापित कर स्वयं को परिभाषित एवं निर्धारित कर सकता है |अस्तित्ववाद के जनक के रूप में जाने जाने वाले कीर्केगार्द केवल सत्य एवं सार्थक चीज़ को ही अस्तित्ववान मानते हैं तथा उनका मानना है कि इन सब कार्यों में मनुष्य स्वतंत्र है और वह अपनी इच्छानुसार किसी भी चीज़ का चयन कर सकता है- *“कीर्केगार्द ने सत्य को आत्मपरक बना दिया | उसके अनुसार अस्तित्ववादी मनुष्य ही चिंतन और*

वितस्ता २०२१

प्रामाणिक वर्ण की प्रक्रिया से अपने ऐतिहासिक विकास का अंतर्दर्शन कर सकता है और अपने अज्ञात मार्ग का निर्धारण कर सकता है | अपने चिंतन और वरन के वर्ण के लिए मानव पूर्णतया स्वतंत्र है|"[5] कीर्केगार्द ने स्वयं को पहचानने के लिए खुद को अस्तित्ववादी बनाना उच्च बताया है क्योंकि उनका मानना है कि केवल अस्तित्ववादी मनुष्य ही खुद के होने को दूसरों के सामने सार्थक बना सकता है और अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है| जहाँ तक मनुष्य के अस्तित्व का प्रश्न है तो निश्चित रूप से अस्तित्ववाद के अंतर्गत ही उससे संबंधित समस्त प्रश्नों के उत्तर हमें प्राप्त होते हैं | अस्तित्ववादी विचारधारा एक ऐसी विचारधारा है जिसने सर्वप्रथम मनुष्य के अस्तित्व को ही सर्वोपरि माना है | इसमें कोई संदेह नहीं कि 19वीं शताब्दी से ही अस्तित्व एक चर्चा का विषय बन गया जिसमे सोरेन कीर्केगार्द (1813-1855) तथा फ्रेडरिक नीत्शे (1844-1900) की रचनाएँ उल्लेखनीय हैं | इसे मात्र चर्चा का विषय न मानकर एक आन्दोलन का रूप देने में अस्तित्ववादियों ने ठोस कदम उठाया जिसके फलस्वरूप आगे चलकर मनुष्य तथा उसके अस्तित्व को लेकर सामान्य जन तथा प्रसिद्ध दार्शनिकों का दृष्टिकोण ही बदल गया | अस्तित्व को व्याख्यित करते हुए जर्मन के प्रसिद्ध वैज्ञानिक एवं नीतिशास्त्रीय इमानुएल *कांट* (1724-1804) ने कहा है- "*अस्तित्व वस्तुतः एक वास्तविक विधेय अथवा किसी चीज़ की अवधारणा नहीं है जिसे किसी दूसरी चीज़ की अवधारणा में जोड़ा जा सके|*"[6]

कीर्केगार्द की भांति फ्रेडरिक नीत्शे और दोस्तोव्स्की ने भी मानव-अस्तित्व को ही सर्वश्रेष्ठ माना है | उनका विचार है कि "*मानव-अस्तित्व पर धर्म, दर्शन तथा नैतिकता के जितने भी परंपरागत आरोपण थे उनका निषेध करते हुए इन्होने व्यक्ति की निजी विशिष्टता को सर्वोपरि महत्व दिया है|*"[7] अस्तित्ववादी दार्शनिक मानव-अस्तित्व पर किसी भी धर्म, शास्त्र अथवा प्राचीन काल से चले आ रहे नैतिक-मूल्यों के प्रभाव अथवा नियंत्रण को नकार कर मनुष्य के व्यक्तिगत अस्तित्व को ही उच्च मानते हैं | इसी प्रकार *अस्तित्व* को सभी प्रकार की बाधाओं तथा आरोपणों से मुक्त स्वीकार करते हुए कार्ल जैसपर्स कहते है- "*अस्तित्व का अर्थ है : व्यक्ति की स्वयं की मौलिक स्वतंत्रता तथा अभीष्ट का वर्ण करने का विकल्प|*"[8]

अस्तित्ववादी विचारधारा में मनुष्य की स्वतंत्रता पर अधिक बल दिया गया है जो कि मानव-अस्तित्व की सार्थकता केलिए एक महत्वपूर्ण शर्त है| प्रायः सभी अस्तित्ववादी विचारकों ने अपने-अपने ढंग से मानव-स्वतंत्रता की ओर संकेत किया है | इन विचारकों में सर्वप्रथम सोरेन कीर्केगार्द ही थे जिन्होंने मानव-अस्तित्व को ही अपने विषय का केंद्र बिंदु बनाया तथा मानव के वैयक्तिक अस्तित्व को

अधिक महत्व प्रदान किया | इस बात की पुष्टि अमेरिकन विश्वकोश में इस रूप में किया गया है- "*it may be said that the recognition of centrality of the problem of man and of man's essential freedom, in the most significant and hopeful feature of the existentialist trend in modern thought.*"[9]

कीर्केगार्द ने मानव-अस्तित्व को सर्वोपरि स्थान देकर उसे सभी प्रकार की धार्मिक, नैतिक, सांस्कृतिक मान्यताओं से मुक्त माना है | उनके इस सिद्धांत अथवा दृष्टिकोण का समर्थन करते हुए डॉ. सत्यदेव मिश्र कहते है- "*उन्होंने एक ऐसा दार्शनिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया जो उन तमाम परंपरागत एवं तर्कसंगत दार्शनिक एवं सामाजिक मतवादों का विरोध करता था, जो मानवी सत्ता (human existence) की उपेक्षा करके, मात्र विचारों तथा नैतिक मूल्यों एवं मान्यताओं की प्रतिस्थापना में संलग्न रहकर प्राचीन परम्पराओं का पालन एवं उन्नयन कर उठे थे|*"[10]

कीर्केगार्द से पूर्व मानव-अस्तित्व पर इतना अधिक विचार-विमर्श नहीं किया गया था जितना कि आज किया जाता है |*अस्तित्व* शब्द के लिए पहले जो शब्द प्रचलित थे उनमें से जीव-शैवाल, मूल्य आदि प्रमुख थे | सर्वप्रथम अस्तित्ववादियों ने ही अस्तित्व नामक एक नए शब्द का निर्माण तथा प्रचलन किया | अस्तित्ववादी विचारक कार्ल यास्पर्स ने अस्तित्व को पहचानने तथा जानने के माध्यमों को भी प्रस्तुत किया है | उनका कहना है कि- "*अस्तित्व को जानने तथा समझने का सबसे सुन्दर साधन या माध्यम अपने-आप को जानना है |*"[11] उनके इस कथन से यह दृष्टिगत होता है कि मनुष्य को यदि अपने अस्तित्व को पहचानना है या दूसरों को अपने होने का बोध कराना है तो सबसे पहले उसे स्वयं को पहचानना होगा अर्थात उसे यह ज्ञात होना चाहिए कि वह इस संसार में क्यों आया है, किस लिए आया है, उसका उद्देश्य क्या है, उसकी योग्यता क्या है |

अस्तित्ववादियों ने न केवल *अस्तित्व* शब्द को मुख्य रूप में प्रचलित किया, अपने विचारानुसार परिभाषित किया बल्कि उन्होंने इस शब्द के प्रायः सभी आयामों को भी पाठकों के समक्ष रखने का एक सफल प्रयास किया है | उन्होंने मानव-अस्तित्व के लिए मनुष्य द्वारा किये गए चयन तथा उसकी स्वतंत्रता पर विशेष बल दिया है | उनका मानना है कि अस्तित्ववान होने के लिए मनुष्य की पूर्ण स्वतंत्रता आवश्यक है ताकि वह अपनी इच्छानुसार किसी भी वस्तु का चयन कर सके | उनके विचार में चयन तथा स्वतंत्रता के अभाव में हम अस्तित्व की कल्पना नहीं कर सकते | कार्ल जैसपर्स इस संदर्भ में कहते है- "*there is no choice without decision, no decision without desire, no desire*

without need, no need without existence."[12] कुल मिलकर अगर हम देखे तो उपर्युक्त कथन भी अस्तित्व को ही सर्वोपरि मानता है |

वास्तव में अस्तित्ववाद ही वह विचारधारा है जिसमें *अस्तित्व* अपनी जड़े जमाए हुए है | यह वह विचारधारा है जिसने मानव-अस्तित्व को सार-तत्त्व से पहले स्थान दिया है क्योंकि अस्तित्ववादी दार्शनिकों की दृष्टि में मनुष्य ही खुद को स्थापित करने के लिए सदैव कार्यरत तथा प्रयत्नशील रहता है | ज्यां पॉल सार्त्र का कहना है कि- "*जब हम कहते हैं कि अस्तित्व सार का पूर्ववर्ती है तो हमारा अभिप्राय होता है कि सर्वप्रथम मनुष्य का अस्तित्व होता है, स्वयं से भिड़ता है, संसार से उभार लेता है और तत्पश्चात ही वह स्वयं को व्याख्यायित करता है* |"[13]

अस्तित्व का विश्लेषण करते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि *अस्तित्व* शब्द अस्तित्ववाद की ही उपज है | अस्तित्व को सभी अन्य चीज़ों से ऊपर मानकर चलने वाले दार्शनिक अस्तित्ववादी कहलाए | मानव-अस्तित्व को परंपरागत बन्धनों और बेड़ियों से मुक्त कराने के लिए भी जितना संघर्ष अस्तित्ववादियों ने किया है कहीं देखने को नहीं मिलता | चाहे वह सोरेन कीर्केगार्द हों, कार्ल जैस्पर्स हों, फ्रेडरिक नीत्शे हों, या फिर ज्यां पॉल सार्त्र-सभी ने मानव-अस्तित्व को ही सर्वोपरि मानकर उसे अपने-अपने ढंग से परिभाषित करने का भी सफल प्रयास किया है | उनका कहना है कि मनुष्य को वर्तमान में क्या बनना है, कैसा बनना है, और किस प्रकार बनना है इसका निर्धारण वह स्वयं कर सकता है | अतः इन सभी पक्षों को दृष्टि में रखकर यह मानना चाहिए कि अस्तित्व एवं अस्तित्ववाद के मध्य एक घनिष्ट सम्बन्ध है और इन दोनों को एक दूसरे से पृथक देखना उचित न होगा |

निष्कर्षतः अस्तित्व को मुख्य रूप से मानव-अस्तित्व के सम्बन्ध में ही परिभाषित एवं व्याख्यायित किया जा सकता है| मानव- अस्तित्व के भीतर उसके धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक आदि सभी पहलुओं पर विचार-विमर्श किया जाना चाहिए| मानव के अस्तित्व के निर्माण में समाज, धर्म, राजनीति, अर्थ- व्यवस्था की मुख्य भूमिका होती है, जो न केवल मनुष्य के बाह्य जगत को बल्कि उसकी आंतरिक मनःस्थिति को भी प्रभावित करने का कार्य करते हैं | समाज में हो रहे भेद-भाव, धर्म के नाम पर हो रहे शोषण, राजनीति में विकास का अभाव तथा आर्थिक स्थिति के कारण मनुष्य अपने अस्तित्व की खोज करने लगता है | यूँ तो सभी विचारधाराओं में किसी न किसी अंश में मानव- अस्तित्व की बात कही गयी है परन्तु वह एक मात्र विचारधारा जो न केवल मनुष्य के अस्तित्व पर विचार करता है बल्कि

वितस्ता २०२१

इस अस्तित्व के प्रेरक-बिंदुओं की ओर भी संकेत करता है, वह अस्तित्वाद ही है| अस्तित्वादी विचारधारा के मूल में केवल मानव है | सोरेन कीर्केगार्द, नीत्शे, ज्यां पॉल सार्त्र, मार्टिन हाइडेगर, दस्तावोसकी, गैब्रियल मार्शल, आल्बेर कामु, सिमोन द बुबेर आदि प्रमुख पाश्चात्य अस्तित्ववादी विद्वानों ने मानव-अस्तित्व को ही सर्वोपरि माना है|

संदर्भ सूची-

1. श्रीवास्तव,त्रिलोचन, और माया अगरवाल. *पाश्चात्य काव्यशास्त्र.(साहित्यालोचन)* कलामंदिर, नई दिल्ली, पृ.161.
2. Khan Divan Taskheer.*The concept authentic existence in extentialisim*. 2007 (unpublished PhD thesis).पृ.12.
3. अमरनाथ. *हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली*. राजकमल प्रकाशन नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली, 2009. पृ.64.
4. Khan Divan Taskheer.*The concept authentic existence in exitentialisim*. 2007 (unpublished PhD thesis) पृ.23.
5. शाही योगेन्द्र.*अस्तित्ववाद-कीर्केगार्द से कामू तक.* ग्रंथलोक, शाहदरा दिल्ली, 2011. पृ.18.
6. वही. पृ.18.
7. वही. पृ.18.
8. वही. पृ.19.
9. श्रीवास्तव, त्रिलोचन. अगरवाल, माया. *पाश्चात्य काव्यशास्त्र(साहित्यालोचन)*. कला-मंदिर, नई दिल्ली, पृ.160.
10. वही. पृ.160.
11. सिंह, शुकदेव. *प्रेमचंदोतर कथा-साहित्य में अस्तित्ववाद*. पृ.58.
12. वही. पृ. 62.
13. गुप्त, लालचन्द.*अस्तित्ववाद और नई कहानी*. शोध प्रबंध प्रकाशन, दिल्ली, 1975. पृ.64-65.